



2026:AHC-LKO:19915

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

लखनऊ

आपराधिक अपील सं. - 696/2005

दुखछोर और 2 अन्य

....अपीलकर्ता (गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

... प्रतिवादी (गण)

अपीलकर्ता (गण) के अधिवक्ता

: आई.पी. सिंह

प्रतिवादी (गण) के अधिवक्ता

: शासकीय अधिवक्ता

न्यायालय सं. - 28

माननीय न्यायमूर्ति प्रमोद कुमार श्रीवास्तव

1. वादों की सूची संशोधित कर दी गई है और इस वाद को संशोधित सूची में लिया जा रहा है।

2. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना गया।

अस्वीकरण:- अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

3. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 374 (2) के अंतर्गत यह वर्तमान अपील, विशेष न्यायाधीश, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति(अत्याचार निवारण) अधिनियम, सुल्तानपुर द्वारा सत्र विचारण सं. 75/1996 जो वाद अपराध सं. 1576/1994, पुलिस थाना अमेठी, जिला सुल्तानपुर से उत्पन्न हुआ है, मैं दिनांक 12.05.2005 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है। विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ताओं दुखछोर, विनोद कुमार और प्रमोद कुमार को भारतीय दंड संहिता की धारा 323/34 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति(अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(1) (एक्स) के अंतर्गत दोषी ठहराया, और उन्हें 6 माह के कारावास के साथ-साथ प्रत्येक पर 500/- रुपये के जुर्माने का दण्डादेश सुनाया। जुर्माना अदा न करने की स्थिति में, अपीलकर्ताओं को एक अतिरिक्त माह का कारावास भुगतने का आदेश दिया गया। सभी दण्डों को साथ-साथ समवर्ती रूप से चलाने का आदेश दिया गया।

4. वाद के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि अभियोजन पक्ष के अनुसार, 15 जून, 1994 को लगभग सुबह 9:00 बजे, शिकायतकर्ता की पत्नी, श्रीमती निर्मला देवी, सरिया-दुबान गाँव में अपने घर पर थीं, तभी एक दीवार के अवैध निर्माण और रास्ते को अवरुद्ध करने के संबंध में एक विवाद उत्पन्न हो गया। अभियुक्त व्यक्तियों—दुखछोर, विनोद कुमार और प्रमोद कुमार ने, जिनके पास लाठियाँ थीं, कथित तौर पर शिकायतकर्ता की पत्नी पर हमला किया और जाति-आधारित अपमानजनक भाषा का प्रयोग किया। आगे यह भी आरोप लगाया गया कि अभियुक्त व्यक्तियों ने आपराधिक धमकी दी और उनकी जान लेने की धमकी दी। इस घटना के संबंध में सूचना उसी दिन दोपहर 12:45 बजे पुलिस स्टेशन

अमेठी, जिला सुल्तानपुर में दर्ज कराई गई, और भारतीय दंड संहिता की धारा 323, 504, 506 तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(1)(एक्स) के अंतर्गत वाद अपराध सं. 1576/1994 के रूप में एक प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत की गई।

5. जाँच अधिकारी ने, जाँच के दौरान, घटनास्थल का दौरा किया, घटनास्थल का नक्शा नजरी तैयार किया और साक्षियों के बयान दर्ज किए। जाँच पूरी होने पर, तीनों अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 323, 504 और 506, तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(1)(एक्स) के अंतर्गत आरोप-पत्र दाखिल किया गया।

6. विचारण न्यायालय ने अभियुक्त व्यक्तियों—दुखछोर, विनोद कुमार और प्रमोद कुमार—के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323/34, 504 और 506 सपाठित अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3(1)(एक्स) को मिलाकर आरोप तय किए। अभियुक्तों ने अपने ऊपर लगाए गए आरोपों का खंडन किया और विचारण की मांग की। (नोट: उच्च न्यायालय के अभिलेखों से पता चलता है कि अपीलकर्ता सं. 1, दुखछोर, का अपील के लंबित रहने के दौरान दिनांक 02.11.2016 को निधन हो गया, जिसके चलते दिनांक 06.04.2023 के आदेश के माध्यम से उनके संबंध में अपील समाप्त हो गई।)

7. अपने वाद को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने कई साक्षियों की जांच की, जिनमें पीड़ित श्रीमती निर्मला देवी (अभियोजन साक्षी-1), शिकायतकर्ता राम भरोसे (अभियोजन साक्षी-2), और डॉ. पी.के. सिंह (अभियोजन साक्षी-5) शामिल थे, जिन्होंने चिकित्सा परीक्षण किया था। अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजी साक्ष्यों में तहरीर (प्रदर्श क-1), चिक एफआईआर (प्रदर्श क-2), जी.डी प्रविष्टि (प्रदर्श क-3), चिकित्सा रिपोर्ट (प्रदर्श क-4), और घटना स्थल का मानचित्र (प्रदर्श क-5) शामिल थे।

8. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य समाप्त होने के बाद, अभियुक्त/अपीलकर्ताओं के बयान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत दर्ज किए गए। विचारण न्यायालय ने उन्हें उनके विरुद्ध उपलब्ध आपत्तिजनक साक्ष्य समझाए, जिसका अपीलकर्ताओं ने खंडन कर दिया, उन्होंने यह तर्क दिया कि शिकायतकर्ता के घर के सामने के रास्ते पर दीवार के निर्माण को लेकर हुए विवाद के कारण उन्हें झूठा फंसाया गया है।

9. इसके बाद, विद्वान विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं की दलीलें सुनने और मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्यों का मूल्यांकन करने के बाद, अपीलकर्ताओं को दोषी पाया। न्यायालय ने दुखछोर, विनोद कुमार और प्रमोद कुमार को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323/34 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3(1) (एक्स) के अंतर्गत दोषी ठहराया, और उन्हें छह महीने के साधारण कारावास तथा प्रत्येक पर ₹ 500 के जुर्माने का दण्डादेश सुनाया, साथ ही, जुर्माना अदा न करने की स्थिति में एक महीने के अतिरिक्त कारावास का भी आदेश दिया।

10. दोषसिद्धि के विवादित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष यह अपील दाखिल की है।

11. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि उन्होंने दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध अपील दाखिल की है, तथापि इस स्तर पर, वे केवल दंडादेश के संबंध में ही अपील पर ज़ोर देना चाहते हैं और अपील के गुण-दोष के आधार पर उस पर ज़ोर नहीं देना चाहते।

12. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह दलील दी कि उत्तर प्रदेश राज्य की अपनी स्थानीय परिवीक्षा विधि है, अर्थात् उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938। उन्होंने आगे यह भी कहा कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (केंद्रीय अधिनियम) (जिसे इसके बाद '1958 का अधिनियम' कहा जाएगा) भी उत्तर प्रदेश राज्य में लागू होता है, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने **मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; (2017) 2 एससीसी 198** के वाद में निर्णय दिया था। इसलिए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह दलील दी कि दोनों में से किसी भी अधिनियम के अंतर्गत लाभ देना न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है।

13. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह दलील दी कि कथित घटना लगभग 32 वर्ष पूर्व हुई थी, और जीवित अपीलकर्ताओं के विरुद्ध कोई आपराधिक इतिहास नहीं है।

यह निवेदन किया गया है कि लंबे समय तक चले विचारण और अपील के लंबे समय तक लंबित रहने के कारण अपीलकर्ताओं को शीघ्र सुनवाई के उनके अधिकार से वंचित कर दिया गया है। चूंकि अपीलकर्ता प्रथम बार अपराध करने वाले हैं और उनके विरुद्ध पहले कोई दोषसिद्धि नहीं हुई है, इसलिए यह प्रार्थना की जाती है कि उन्हें अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ दिया जाए। विशेष रूप से, विद्वान अधिवक्ता ने इस माननीय न्यायालय से आग्रह किया कि वह अपराध की प्रकृति और अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के चरित्र को ध्यान में रखते हुए, 1958 के अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करे और उन्हें परिवीक्षा पर रिहा कर दे।

14. दूसरी ओर, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने अपील का विरोध किया और यह दलील दी कि विचारण न्यायालय द्वारा कोई भी महत्वपूर्ण अनियमितता या अविधिक कार्य नहीं किया गया है, और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों को देखते हुए, अभियुक्त-अपीलकर्ता को सही ढंग से दोषी ठहराया गया है।

15. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे कहा कि 1958 के अधिनियम की धारा 4 का लाभ अभियुक्त-अपीलकर्ता को कुछ शर्तों के अधीन दिया जा सकता है, जैसा कि 1958 के अधिनियम की धारा 4 में ही निर्दिष्ट किया गया है।

16. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों पर विचार करने से पहले, 'अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 3 और 4 को उद्धृत करना उचित होगा:

अस्वीकरण:- अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

"3. कुछ अपराधियों को चेतावनी देकर छोड़ने की न्यायालय की शक्ति -

"जहाँ कोई व्यक्ति भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 379, धारा 380, धारा 381, धारा 404 या धारा 420 के अंतर्गत दंडनीय अपराध का दोषी पाया जाता है, या भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य विधि के अंतर्गत ऐसे किसी अपराध का दोषी पाया जाता है जिसके लिए दो वर्ष से अधिक की कारावास, या जुर्माना, या दोनों का दंड निर्धारित है, और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि सिद्ध नहीं होती है, और जिस न्यायालय द्वारा उस व्यक्ति को दोषी पाया गया है, उस न्यायालय की यह राय है कि वाद की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी शामिल है को ध्यान में रखते हुए ऐसा करना उचित है, तो, उस समय लागू किसी अन्य विधि में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, न्यायालय उसे कोई दंड देने या धारा 4 के अंतर्गत सदाचरण की परिवीक्षा पर रिहा करने के बजाय, उचित भर्त्सना के बाद रिहा कर सकता है।

स्पष्टीकरण- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, किसी व्यक्ति के विरुद्ध पूर्व दोषसिद्धि में, इस धारा या धारा 4 के अंतर्गत उसके विरुद्ध किया गया कोई पूर्व आदेश भी शामिल होगा।

4. कुछ अपराधियों को सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ने की न्यायालय की शक्ति

- (1) जब किसी व्यक्ति को ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है जो मृत्युदंड या

आजीवन कारावास से दण्डनीय नहीं है, और जिस न्यायालय ने उसे दोषी पाया है, उसकी यह राय है कि वाद की परिस्थितियों को देखते हुए जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी शामिल है उसे सदाचरण की परीक्षा पर रिहा करना उचित है, तो उस समय लागू किसी अन्य विधि में कही गई किसी भी बात के बावजूद, न्यायालय उसे तुरंत कोई दण्ड देने के बजाय यह निर्देश दे सकता है कि उसे एक बंधपत्र भरने पर रिहा कर दिया जाए। यह बंधपत्र जमानतदार के साथ या बिना जमानतदार के हो सकता है, और इसके अंतर्गत उसे न्यायालय द्वारा निर्धारित अवधि जो तीन वर्ष से अधिक नहीं होगी के दौरान, जब भी बुलाया जाए, न्यायालय में उपस्थित होकर दण्ड ग्रहण करना होगा, और इस बीच उसे शांति बनाए रखनी होगी तथा उसका आचरण अच्छा होना चाहिए।

बशर्ते कि न्यायालय किसी अपराधी की ऐसी रिहाई का निर्देश तब तक नहीं देगा, जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि अपराधी या उसका जमानतदार यदि कोई हो उस स्थान पर, जिस पर न्यायालय का क्षेत्राधिकार है, या उस स्थान पर जहाँ अपराधी उस अवधि के दौरान रहने की संभावना रखता है जिसके लिए वह बंधपत्र निष्पादित करता है, कोई निश्चित निवास स्थान या नियमित रोजगार रखता है।"

17. 1958 के अधिनियम की धारा 4 वहाँ लागू होती है, जहाँ कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है, जिसके लिए दण्ड न तो आजीवन कारावास है और न ही

मृत्युदंड। न्यायालय, ऐसे अभियुक्त को, धारा में उल्लिखित अनुसार एक बंधपत्र प्रस्तुत करने पर, सदाचरण की परिवीक्षा पर रिहा कर सकता है। इस धारा के प्रावधानों को लागू करते समय, न्यायालय को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने से पूर्व, वाद की परिस्थितियों, अपराधी के चरित्र और अपराध की प्रकृति पर भी विचार करना आवश्यक होता है।

18. जहाँ तक अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा 1958 के अधिनियम की धारा 4 के लाभ प्रदान किए जाने के अनुरोध का प्रश्न है, वहाँ विधिक स्थिति और उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि पर चर्चा करना अनिवार्य है।

19. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **रतन लाल बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1965 एससी 444** के वाद में, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के उद्देश्य और प्रयोजन पर चर्चा करते हुए, अनुच्छेद सं. 4 में निम्नलिखित टिप्पणी की है:—

“4. यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदारवादी प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य अपराधी को दंडित करने के बजाय उसका सुधार करना अधिक है। व्यापक रूप से, यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उससे अधिक आयु के अपराधियों के मध्य, तथा मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध करने के दोषी अपराधियों और कम गंभीर अपराध के दोषी अपराधियों

के मध्य अंतर करता है। जहाँ 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के वाद में, न्यायालय को यह पूर्ण विवेकाधिकार दिया गया है कि वह अधिनियम के उपयुक्त प्रावधान में निर्धारित शर्तों के अधीन, उन्हें चेतावनी देकर या अच्छे सदाचरण की परीक्षा पर रिहा कर दे, वहीं 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के वाद में, न्यायालय को यह निषेधाज्ञा जारी की गई है कि वह उन्हें कारावास का दंड तब तक न दे, जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि वाद की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधियों का चरित्र शामिल है को देखते हुए, उनके साथ अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत व्यवहार करना उचित नहीं है।

20. इसके अतिरिक्त, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **वेद प्रकाश बनाम हरियाणा राज्य (1981) 1 एससीसी 447 : एआईआर 1981 एससी 643** के वाद में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 सपठित अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के अनुपालन के संबंध में बेंच और बार के कर्तव्य पर चर्चा करते हुए, निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"जिस अपराध के लिए दोषसिद्धि दी गई है, वह ऐसा है जिस पर धारा 360, या कम से कम अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 लागू होता है। हमारे समक्ष उपलब्ध सामग्री अपूर्ण है, क्योंकि विचारण न्यायालय ने दण्डादेश सुनाने के अपने कर्तव्य को निभाने में असावधानी बरती है। हम इस बात पर ज़ोर देना चाहते हैं कि किसी अभियुक्त को दण्ड देना, विवेक का एक संवेदनशील कार्य है, यह कोई नियमित या यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है जो केवल अनुमान पर आधारित हो। विचारण

न्यायालय को ऐसी सामग्री एकत्र करनी चाहिए थी जो, परिस्थितियों को देखते हुए, एक उचित दण्ड देने में सहायक हो। अपराधी की सामाजिक पृष्ठभूमि और व्यक्तिगत कारक अत्यंत प्रासंगिक होते हैं, यद्यपि व्यवहार में आपराधिक न्यायालयों ने अपराधी के सामाजिक परिवेश या व्यक्तिगत परिस्थितियों पर शायद ही कभी ध्यान दिया हो। भले ही दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 लागू न होती हो, फिर भी दण्ड देने वाले न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह सक्रियता दिखाते हुए ऐसे तथ्य एकत्र करे जिनका दण्ड पर प्रभाव पड़ता हो और जिनका उद्देश्य अपराधी का पुनर्वास करना हो। वर्तमान वाद में ऐसी सामग्री के अभाव के कारण, हमें अधिवक्ताओं से भी बहुत कम सहायता मिल पाई है। वास्तव में, अधिवक्ता-गण भी उन विधायी प्रावधानों पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते, जो अपराधी के साथ इस प्रकार व्यवहार करने से संबंधित हैं कि वह भविष्य में अपराध न करे। हम इस बात पर इसलिए ज़ोर दे रहे हैं, क्योंकि दण्ड में सुधार से संबंधित अधिनियम को 'लघु अधिनियम' मान लिया गया है, और इसलिए उन्हें कम महत्व दिया जाता है। यह दृष्टिकोण पूर्णतः गलत है; और यदि अधिवक्ता-गण सहायता न भी करें, तो भी न्यायपीठ का यह दायित्व है कि वह अपराधी परिवीक्षा अधिनियम जैसी विधियों में निहित, दण्डादेश सुनाने के मानवीय उद्देश्य को पूरा करे।"

21. यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस माननीय न्यायालय ने **सुभाष चंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2015 लॉ सूट (ऑल) 1343** के वाद में, इस बात पर ज़ोर दिया है कि उचित वादों में परिवीक्षा के विधि को लागू किया जाए और अभियुक्त व्यक्तियों को इस

लाभकारी विधान का लाभ दिया जाए। इस न्यायालय ने सभी विचारण न्यायालयों और अपीलीय न्यायालयों को निम्नलिखित निर्देश जारी किए:-

“ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त लाभकारी अधिनियम को भुला दिया गया है और यहाँ तक कि न्यायाधीश भी विधि के इस प्रावधान को व्यावहारिक रूप से भूल चुके हैं। अतः, इस वाद को समाप्त करने से पहले, यह न्यायालय महसूस करता है कि यदि विचारण न्यायालयों और अपीलीय न्यायालयों के लिए सावधानी का एक शब्द नहीं लिखा गया, तो मैं अपने कर्तव्यों के निर्वहन में विफल रहूँगा। इस न्यायालय के महानिबंधक को निर्देश दिया जाता है कि वे इस निर्णय की एक प्रति उत्तर प्रदेश के सभी जिला न्यायाधीशों को वितरित करें, जिला न्यायाधीश बदले में यह सुनिश्चित करेंगे कि इस निर्णय की प्रति उनके अधीन कार्यरत सभी न्यायिक अधिकारियों के बीच वितरित हो और इस निर्णय का कठोरता से पालन सुनिश्चित किया जाए। राज्य के जिला न्यायाधीशों को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे ऐसे मामलों की सुनवाई करने वाले सभी न्यायालयों अर्थात् विचारण न्यायालयों और अपीलीय न्यायालयों से हर मह रिपोर्ट मंगाएँ, और यह बताएँ कि कितने वादों में अभियुक्तों को उपर्युक्त प्रावधानों का लाभ प्रदान किया गया है। जिला न्यायाधीशों को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे प्रत्येक मासिक बैठक में ऐसे मामलों की व्यक्तिगत रूप से निगरानी करें। संबंधित जिला न्यायाधीश, महानिबंधक को एक मासिक विवरण भेजेंगे, जिसमें यह बताया जाएगा कि विचारण न्यायालय/अपीलीय न्यायालय ने कितने वादों में अभियुक्तों को उपर्युक्त लाभकारी अधिनियम का लाभ

प्रदान किया है। इस आदेश की एक प्रति तत्काल अनुपालन हेतु महानिबंधक के समक्ष रखी जाए।”

22. इसके अतिरिक्त, माननीय उच्चतम न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य बनाम जगमोहन सिंह कुलदीप सिंह आनंद (2004) 7 एससीसी 659 के वाद में, अपीलकर्ताओं को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ प्रदान किया है, और निम्नानुसार टिप्पणी की है:—

“अभियुक्त की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने यह दलील दी कि यह दुर्घटना वर्ष 1990 की है। दोनों पक्ष शिक्षित हैं और पड़ोसी भी हैं। इसलिए, विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रार्थना की कि अभियुक्त को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ दिया जाए। अभियुक्त की ओर से की गई यह प्रार्थना उचित प्रतीत होती है। यह दुर्घटना दस वर्ष से भी अधिक पुरानी है। यह विवाद पड़ोसियों के बीच नाली के अधिकार को लेकर हुए एक तुच्छ से विवादक पर आधारित था। यह दुर्घटना क्रोध के आवेश में हुई थी। सभी पक्ष शिक्षित हैं और आपस में दूर के रिश्तेदार भी हैं। यह दुर्घटना ऐसी नहीं है जिसके लिए अभियुक्त को कारावास का दण्ड भुगतने का निर्देश दिया जाए। हमारी राय में, यह एक ऐसा उपयुक्त वाद है जिसमें अभियुक्त को परिवीक्षा पर रिहा कर दिया जाना चाहिए, और उन्हें सदाचरण के लिए एक वर्ष का बंधपत्र भरने का निर्देश दिया जाना चाहिए।”

23. अब, **सीताराम पासवान और अन्य बनाम बिहार राज्य एआईआर 2005 एससी 3534** के वाद में अभियुक्तों/अपीलकर्ताओं को परिवीक्षा अधिनियम का लाभ देने की वांछनीयता के बिंदु पर आते हुए, उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

"उस शक्ति का प्रयोग करने के लिए जो विवेकाधीन है, न्यायालय को वाद की परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र पर विचार करना होता है। अपराध की प्रकृति पर विचार करते समय, न्यायालय को अपराध की गंभीरता और पीड़ित पर अपराध के प्रभाव का यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अभियुक्त को मिलने वाला लाभ, उन सीमाओं के अधीन है जो इस अधिनियम के प्रावधानों में निहित हैं, और शब्द 'सकता है' स्पष्ट रूप से यह इंगित करता है कि यह विवेक न्यायालय के पास है कि वह अपराध की प्रकृति, अपराधी के चरित्र और वाद की समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 3 या 4 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपराधी को रिहा करे या नहीं। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत शक्तियाँ न्यायालय में तब निहित होती हैं, जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है जिसके लिए मृत्युदंड या आजीवन कारावास का दण्ड नहीं दिया सकता है। इस शक्ति का प्रयोग न्यायालयों द्वारा किसी व्यक्ति को दोषी ठहराते समय किया जा सकता है, और यदि न्यायालय को लगता है कि वाद की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र शामिल है को देखते हुए, अभियुक्त को यह लाभ दिया जाना चाहिए, तो

न्यायालय इस शक्ति का प्रयोग अपीलीय या पुनरीक्षण स्तर पर भी कर सकता है, और साथ ही यह न्यायालय भी, भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपील की सुनवाई करते समय, इस शक्ति का प्रयोग कर सकता है।"

24. यह भी उल्लेखनीय है कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने, **मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य एआईआर 2017 एससी पृष्ठ 660** के वाद में, निम्नलिखित टिप्पणी की थी:

"20-.....रतन लाल बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1965 एससी 444 के वाद में, न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने बहुमत की ओर से निर्णय देते हुए यह राय व्यक्त की:-

यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदारवादी प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य अपराधी को दंडित करने की अपेक्षा उसका सुधार करना अधिक है। व्यापक रूप से कहें तो, यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उससे अधिक आयु के अपराधियों के मध्य तथा उन अपराधियों के मध्य जो मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध के दोषी हैं और उन अपराधियों के बीच जो किसी कम गंभीर अपराध के दोषी हैं, अंतर करता है। जबकि 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के वाद में, न्यायालय को यह पूर्ण

विवेकाधिकार दिया गया है कि वह अधिनियम के उपयुक्त प्रावधानों में निर्धारित शर्तों के अधीन रहते हुए, उन्हें चेतावनी देकर या सदाचरण की परीक्षा पर रिहा कर दे, वहीं 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के वाद में, न्यायालय को यह निर्देश दिया गया है कि वह उन्हें कारावास का दंड न दे, जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि वाद की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधियों का चरित्र शामिल है को देखते हुए, उनके साथ अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत व्यवहार करना उचित नहीं है।

25. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **जगत पाल सिंह और अन्य बनाम हरियाणा राज्य एआईआर 2000 एससी 3622** के वाद में, अभियुक्तों की भारतीय दण्ड संहिता धारा 323, 452, 506 के अंतर्गत दोषसिद्धि को बरकरार रखते हुए भी, उन्हें परीक्षा का लाभ दिया है और अभियुक्तों को इस शर्त पर रिहा किया है कि वे मजिस्ट्रेट के समक्ष एक बंधपत्र निष्पादित करेंगे, जिसमें वे छह महीने की अवधि तक सदाचरण और शांति बनाए रखने का वचन देंगे।

26. यह उल्लेखनीय है कि यह घटना बहुत पहले, वर्ष 1994 में घटित हुई थी। अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को इस वाद में पिछले 32 वर्षों से कष्ट उठाना पड़ा है, और अपीलकर्ताओं के विरुद्ध कोई भी आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं हैं।

27. वाद के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, मेरा यह मत है कि अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के प्रावधानों का लाभ प्रदान किया जाना चाहिए।

28. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, अपीलकर्ताओं विनोद कुमार और प्रमोद कुमार की दोषसिद्धि को बरकरार रखा जाता है, लेकिन उनके दण्डादेश में संशोधन किया जाता है, क्योंकि अपीलकर्ताओं की उम्र 60 वर्ष से अधिक है। अपीलकर्ताओं को जेल भेजने के बजाय, उन्हें अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ दिया जाता है। उन्हें निर्देश दिया जाता है कि वे संबंधित ज़िला परिवीक्षा अधिकारी के सामने, अपने व्यक्तिगत बंधपत्रों के साथ, 20,000/- रुपये के दो जमानतदार प्रस्तुत करें। उन्हें आज से एक वर्ष तक शांति और अच्छे व्यवहार को बनाए रखने का एक वचनपत्र भी देना होगा। ये बंधपत्र अपीलकर्ताओं को इस निर्णय की तिथि से दो मह के भीतर प्रस्तुत करने होंगे।

29. आगे यह भी निर्देश दिया जाता है कि अपीलकर्ता आज से दो मह के भीतर विचारण न्यायालय में प्रत्येक 2,000/- रुपये की राशि जमा करेंगे। विचारण न्यायालय यह राशि घायल व्यक्ति श्रीमती निर्मला देवी को मुआवज़े के तौर पर देगा। यदि वह जीवित नहीं हैं, तो यह राशि उनके विधिक उत्तरधिकारियों को दी जाएगी।

30. उपरोक्त किसी भी शर्त का उल्लंघन होता है, तो अपीलकर्ताओं विनोद कुमार और प्रमोद कुमार को हिरासत में ले लिया जाएगा और उन्हें दिया गया वास्तविक दण्ड पूर्ण करना होगा।

उपरोक्त संशोधन के साथ, इस तत्काल आपराधिक अपील को **आंशिक रूप से स्वीकार** किया जाता है।

32. आदेश की एक प्रमाणित प्रति भी अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को भेजी जाए।

33. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश को आवश्यक अनुपालन हेतु संबंधित न्यायालय को सूचित करे।

34. विचारण न्यायालय का अभिलेख, यदि कोई हो, तो उसे भी संबंधित जिला न्यायालय को वापस भेज दिया जाएगा।

(न्यायमूर्ति प्रमोद कुमार श्रीवास्तव)

17 मार्च 2026

हसीन यू.